वर्ग-समन्वय के मार्ग और उसकी बाधाएं

आदर्श व्यक्ति के जीवन में वर्ग-समन्वय का बहुत बड़ा महत्व होता है। सामान्यतया धूर्त व्यक्ति वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष का सहारा लेता है। आदर्श व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह किसी भी परिस्थिति में वर्ग-निर्माण को प्रोत्साहित न करें। वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष तो पूरी तरह असमाजिक कार्य माना ही जाना चाहिए, लेकिन वर्ग-निर्माण भी अच्छा कार्य नहीं है। पूरी दुनिया में वर्ग-संघर्ष बढ़ाने के लिए आठ आधार माने जाते हैं धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, गरीब-अमीर, किसान-मजदूर इन आठ आधारों पर धूर्त लोग वर्ग-निर्माण वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष का सहारा लेते हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत के सभी राजनेताओं ने वर्ग-संघर्ष का सहारा लिया और इन आठों आधारों पर लगातार सक्रियता दिखाई। भारत का एक भी राजनीतिक दल ऐसा नहीं है जिसने इन सभी आधारों का उपयोग न किया हो। स्वतंत्रता के बाद आठों आधारों पर लगातार सभी राजनीतिक दलों ने सक्रिय होकर वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष बढ़ाया, जबकि आदर्श स्थिति 'वर्ग-समन्वय' की होनी चाहिए। मेरे विचार से आदर्श व्यक्तित्व की पहचान में वर्ग-समन्वय का महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए।

महिला-पुरुष के नाम पर अनुचित वर्ग-संघर्ष :

वर्तमान भारत में सबसे प्रमुख वर्ग-संघर्ष महिला सशक्तिकरण के नाम से बढ़ रहा है। क्योंकि जब तक परिवार व्यवस्था नहीं टूटेगी तब तक वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष पूरी तरह लाभकारी नहीं हो सकेगा। परिवारों को तोड़ने के लिए सबसे अच्छा आधार है 'लिंग भेद'। महिला और पुरुष के बीच यदि अविश्वास की दीवार खड़ी कर दी जाए, तो परिवार बहुत आसानी से टूट सकते हैं। प्राकृतिक रूप से दोनों के बनावट में यह अंतर है कि पुरुष को शक्ति अधिक मिली है और महिलाओं को ब्लैकमेलिंग की ताकत ज्यादा मिली है। पुरुष श्रम और शक्ति के आधार पर अपने को श्रेष्ठ, एवं महिलाएं यौनिक शक्ति के आधार पर अपने को श्रेष्ठ बनाती और मानती हैं। वर्तमान समय में एक तरफ परिवार व्यवस्था में पुरुष-महिलाओं को दबाकर रखता है, तो दूसरी ओर योनि के व्यावसायिक स्तर पर महिलाएं पुरुषों को हमेशा ब्लैकमेल करती रहती हैं। अभी कल ही रायपुर शहर में तीन ऐसी बहनों को गिरफ्तार किया गया है जो वर्षों से इसी तरह ब्लैकमेल करके करोड़पति बन गई थी।

पुराने जमाने में भी विष कन्या के रूप में इनका उपयोग किया जाता था। आज भी अनेक महिलाएं एक-एक रात का लाखों रुपया वसूल लेती है, फिर भी आश्चर्य है कि पुरुष को अत्याचारी और महिला को कमजोर बता दिया जाता है। पुरुष और महिला का यह भेद इसलिए किया जाता है कि इसके माध्यम से परिवारों को तोड़ा जा सके, समाज व्यवस्था को कमजोर किया जा सके और समाज के ऊपर राजनीतिक व्यवस्था हावी हो जाए। मेरा यह निवेदन है कि न सभी महिलाएं ठीक होती हैं ना सभी पुरुष ठीक होते हैं, सभी वर्गों में सभी प्रकार के लोग होते हैं। अत्याचार, अपराध नहीं होना चाहिए, चाहे वह महिला करें या पुरुष करें। इसलिए मेरा यह निवेदन है कि महिला सशक्तिकरण का नारा समाज के लिए बहुत घातक है, इसे तुरंत बंद कर देना चाहिए। महिला और पुरुष के बीच वर्ग-समन्वय की आवश्यकता है, वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष की नहीं।

संगठन प्रधान धर्म से दूरी बनाना आवश्यक:

दुनिया में धर्म के दो अर्थ प्रचलित हैं एक गुण प्रधान दूसरा संगठन प्रधान। धर्म के आधार पर हम दुनिया को चार भागों में बांट सकते हैं हिंदू, ईसाई, मुसलमान और कम्युनिस्ट। इन चारों की धार्मिक मान्यताएं बिल्कुल अलग-अलग हैं। हिंदू पूरी तरह गुण प्रधान धर्म को मानता है यद्यपि पिछले 200 वर्षों से हिंदुओं में भी धीरे-धीरे संगठन प्रधान धर्म की शुरुआत हो गई है। लेकिन आज भी गुण प्रधान धर्म को ही प्रमुख माना जाता है। ईसाइयों में भी गुण प्रधान धर्म को प्रमुख माना जाता है, यद्यपि संगठन प्रधान धर्म को भी ईसाइयों में तेजी से मान्यता मिल रही है। कैथोलिक संगठन प्रधान होते ही हैं, प्रोटेस्टेंटों में गुण प्रधानता अधिक पाई जाती है। यदि हम मुसलमान की चर्चा करें तो मुसलमान तो पूरी तरह संगठन प्रधान ही होता है उसमें गुण प्रधानता होती ही नहीं है। यदि हम साम्यवादियों की चर्चा करें तो साम्यवादियों में ना गुण प्रधान होता है, न संगठन प्रधान होता है। गुण प्रधान धर्म का विरोध करना साम्यवाद का एकमात्र धर्म है। वह सत्य, अहिंसा या अन्य, इस प्रकार के किसी भी गुण को किसी भी परिस्थिति में स्वीकार करने का तो प्रश्न ही नहीं है, बल्कि इन गुणों का पूरी तरह विरोध करना साम्यवाद का धर्म है। सारी दुनिया में धर्म के नाम पर जितनी हत्याएं हुई है, जितने अपराध हुए हैं, उतने अपराध दुनिया में अपराधियों ने नहीं

किए होंगे। यह सारे अपराध संगठन प्रधान धर्म की उपज है, या उन धर्म प्रेमियों की उपज है, जो गुण प्रधान धर्म के विरुद्ध दिन-रात षड्यंत्र करते रहते हैं। आज भी दुनिया यदि अशांत बनी हुई है तो वह संगठन प्रधान इस्लाम और गुण प्रधान विरोधी कम्युनिस्टों के कारण है। यदि यह दोनों ईसाइयों और हिंदुओं से कुछ सीख लें, तो दुनिया में शांति स्थापित हो सकती है। गुण प्रधान धर्म का विस्तार ही दुनिया में शांति स्थापना का एकमात्र आधार है।

वर्ण आधारित समाज में जाति व्यवस्था :

पुराने जमाने में कर्म के अनुसार जातियों का निर्धारण हुआ था। वर्ण व्यवस्था गुण कर्म और स्वभाव को मिलाकर बनी थी और इसी वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत ही कर्म के अनुसार जातियों का निर्धारण होता था। जो व्यक्ति सोना या लोहे का काम करता था, उसकी जाति कर्म के अनुसार अलग होती थी, जन्म के अनुसार नहीं। सुनार, लोहार यह कर्म के अनुसार थे। ब्राह्मणों की जातियां अलग थी, क्षत्रियों की अलग, वैश्यों की अलग और शूद्रों की अलग। सब में अलग-अलग कर्मानुसार जातियां थी। धीरे-धीरे जब व्यवस्था रूढ़ हुई, तो जन्म के अनुसार जातियां बनने लगी और इस जन्म अनुसार जाति व्यवस्था में विकृतियां पैदा हुई। इन विकृतियों के कारण ही समाज में अव्यवस्था और अराजकता पैदा हुई। उन अराजकताओं के कारण समाज में वर्ग बनने लगे। समाज में जाति के आधार पर संगठनों का बनना, एक मजबूरी भी थी और एक समस्या भी। राज्य अगर इस मजबूरी को दूर कर देता, तो यह जातिवाद समस्या नहीं बनता। राज्य ने अपना कार्य नहीं किया, इसके कारण जातीय संगठन ज्यादा मजबूत होते चले गए। आज हिंदुओं के लिए जातीय संगठन एक बहुत बड़ी समस्या बना है। इससे मुक्ति का कोई मार्ग नहीं दिखता है क्योंकि जो भी राजनीतिक दल विपक्ष में होता है, वह जातिवाद के सहारे ही अपनी राजनीति चलाना चाहता है। जब तक राजनीति का एक महत्वपूर्ण वर्ग जातिवाद को प्रोत्साहन देता रहेगा, तब तक इस समस्या का समाधान बहुत कठिन है। वर्तमान समय में विपक्ष जातिवाद के सहारे अपनी राजनीति को आगे बढ़ना चाहता है, यह एक बहुत बड़ी समस्या है। इसका वर्तमान में कोई समाधान नहीं दिखता है, किंतु समाधान करना तो आवश्यक है।

वर्ग-संघर्ष का बड़ा आधार जातिवाद:

'जातिवाद एक समस्या है' यह बात स्वतंत्रता के बहुत पहले से अनुभव की जा चुकी थी। स्वामी दयानंद के आर्य समाज, गांधी, विनोबा, जयप्रकाश के सर्वोदय और श्री राम शर्मा के गायत्री परिवार ने जाति भेदभाव और जातिवाद की बुराइयों को दूर करने की कोशिश की। दूसरी ओर कम्युनिस्ट, मुसलमान और नेहरू परिवार ने अंबेडकर के साथ मिलकर जातिवाद की बुराइयों का लाभ उठाने का प्रयत्न किया। इन सब ने हिंदू धर्म को कमजोर कर विभाजित करने के लिए जातिवाद को एक शस्त्र के रूप में उपयोग किया। अब अंबेडकर तो नहीं है लेकिन नेहरू परिवार, साम्यवाद और इस्लाम यह पूरी ताकत से हिंदू समाज को कमजोर करने के लिए, जातिवाद का उपयोग कर रहे हैं। इन सब ने मिलकर एक ऐसा संविधान बनाया, जो जातिवाद की बुराइयों को लंबे समय तक मजबूत करने में सहायक रहा। इस समस्या को देश अच्छी तरह समझ तो रहा है किंतु असहाय है। इसके सामने खड़े साम्यवाद, इस्लाम और नेहरू परिवार का गठजोड़ इतना मजबूत है कि वह जातिवाद की बुराइयों को दूर होने ही नहीं देता। प्रश्न उठता है कि इसका समाधान क्या है? मेरे विचार से जातिवाद की बुराइयों को दूर करने के लिए समाज अपने सामाजिक स्तर पर ही प्रयत्न करे। संविधान और राज्य व्यवस्था को पूरी तरह जाति-धर्म निरपेक्ष होना चाहिए। संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति एक इकाई हो, जाति, धर्म या अन्य भेद मानना यह उसकी (व्यक्ति) आंतरिक स्वतंत्रता हो सकती है, संवैधानिक अधिकार नहीं। संविधान यदि धर्म जाति निरपेक्ष हो जाए तो जातिवाद की बुराई पर अंकुश लगाया जा सकता है। इस कार्य के लिए जरूरी है कि नेहरू परिवार इस्लाम और साम्यवाद की एकता को छिन्न-भिन्न किया जाए। तभी जातिवाद की बुराई से मुकाबला संभव है। क्योंकि जब तक बुरी नीयत का यह गठजोड़ शस्त्र विहिन नहीं होता तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा।

हमें तीन दिशाओं में अलग-अलग प्रयत्न करने होंगे। पहली दिशा यह होगी कि हिंदू समाज में छुआछूत और जन्मना जाति व्यवस्था को दूर करने का प्रयास करें। हम सामाजिक एकता की पूरी कोशिश करें, किसी भी रूप में अब छुआछूत का समर्थन करना पूरी तरह घातक है। जन्मना जाति को एक सामाजिक बुराई मानकर इस बुराई को छोड़ने के लिए, हम हिंदू समाज में जन जागरण करें। दूसरी ओर हमारी इस बुराई का लाभ उठाने का प्रयत्न करने

वाले नेहरू परिवार, साम्यवाद और मुसलमान इन तीनों के गुट का हम खुला विरोध करें। तीसरी बात कि हम पूरा प्रयत्न करें कि भारतीय संविधान पूरी तरह जाति निरपेक्ष हो, धर्मनिरपेक्ष हो, राजनीति निरपेक्ष हो। भारतीय संविधान में व्यक्ति एक इकाई हो, कहीं भी किसी भी रूप में धर्म, जाति इनका उल्लेख नहीं होना चाहिए एवं सबको समान अधिकार मिलना चाहिए। इस तरह हमें यह प्रयत्न भी करना होगा कि एक राजनीति निरपेक्ष संविधान का निर्माण हो। इस तरह हमें यह तीन प्रयास एक साथ करने होंगे, तभी हम इस बीमारी से मुक्त हो पाएंगे।

भाषागत संघर्ष को बढ़ावा केवल राजनैतिक दुराग्रह:

स्वतंत्रता के पहले भारत में भाषाओं के नाम पर किसी प्रकार के विवाद नहीं थे, यहां तक कि उर्दू, अंग्रेजी, हिंदी यह सभी मिलजुल कर अपना काम करते थे। एक सिद्धांत के अनुसार भाषा का चयन कभी वक्ता नहीं कर सकता। सच बात यह है कि भाषा का चयन श्रोताओं की समझ के अनुसार होता है। भाषा तो सिर्फ अपने विचार दूसरों तक ठीक-ठाक पहुंचे, इसका माध्यम है इसके अतिरिक्त भाषा का कोई अर्थ नहीं है। भाषा को धर्म, जाति या किसी अन्य भावनात्मक आधार से जोड़ना उचित नहीं है क्योंकि भाषा तो सिर्फ माध्यम है। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद पंडित नेहरू ने वर्ग-संघर्ष बढ़ाने के लिए भाषावार प्रांत बनाने की योजना की और उसका परिणाम हुआ कि देश में भाषा पर विवाद शुरू हुए। एक तरफ तो पंडित नेहरू ने सदा के लिए अंग्रेजी को भारत पर थोप दिया। दूसरी ओर उन्होंने भाषावार प्रांत रचना भी कर दी। आप लोगों को आश्चर्य होगा कि इसी प्रकार की दोहरी नीतियों के कारण आज नेहरू परिवार एक तरफ तो अंग्रेजी के पक्ष में खड़ा हुआ है, दूसरी तरफ इस नेहरू परिवार के लोग क्षेत्रीय भाषाओं की भी वकालत कर रहे हैं। यह वास्तव में अधूरा मापदंड है भाषाओं को प्रदेश के साथ जोड़ देने के कारण आज बंगाल, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत या कुछ अन्य प्रदेशों में भाषा के नाम पर संकीर्ण विचार पैदा हो रहे हैं। मेरा यह विचार है कि भाषा कभी भी किसी सरकार को तय नहीं करनी चाहिए। सरकारी भाषा अपनी हो सकती है, चाहे आप देश में या प्रदेश में अपनी भाषा रख सकते हैं। लेकिन आम लोगों के लिए ना सरकार को कोई भाषा प्रोत्साहित करनी चाहिए, ना किसी भाषा को

निरूत्साहित करना चाहिए। सभी भाषाएं एक दूसरे के साथ संपर्क करें, प्रतिस्पर्धा करें। इससे सरकार का कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए।

क्षेत्रवाद का आधार है राज्यों का भाषावार विभाजन:

भाषावार पूरे देश भर को अलग-अलग क्षेत्र में बांटकर उनके अंदर क्षेत्रीयता की भावना भरी गई। यह वास्तव में हमारा संवैधानिक दोष था। आज स्थिति यह आ गई है कि कुछ प्रदेश अपने को स्वतंत्र घोषित करना चाहते हैं। वह लगातार केंद्र सरकार के साथ अपने संबंध बिगाड़ कर रखते हैं और वे यह सिद्ध करना चाहते हैं, कि भावनात्मक रूप से वे क्षेत्रवाद के आधार पर वर्ग-संघर्ष बढ़ाते रहें। इस मामले में सबसे आगे बिहार का नाम आता है। बिहार के बाद तमिलनाडु, महाराष्ट्र और अब तो बंगाल भी इस मामले में बहुत आगे चल रहा है। क्षेत्रीयता, भाषा को अपने साथ जोड़कर हमेशा वर्ग-संघर्ष की दिशा में बढ़ता हैं। किसी एक प्रदेश का कोई एक छोटा-सा गांव भी यदि किसी दूसरे प्रदेश में आ जाता है। तब उसके लिए दोनों प्रदेशों के लोग आपस में शत्रुता के आधार पर टकराव शुरू कर देते हैं, मरने-मारने की नौबत आ जाती है। यह क्षेत्रवाद का ही उभार है, कि प्रदेशों में आपसी विभाजन की भी हमेशा कोशिश होती रहती है। यह क्षेत्रीयता संपूर्ण देश के लिए बहुत घातक है, लेकिन बढ़ती जा रही है। इस क्षेत्रवाद का अभी तक कोई समाधान नहीं खोजा जा सका है, लेकिन मैंने इसका एक साधारण सा समाधान खोजा है। मेरे विचार से जिस तरह केंद्रीय सरकार के कुछ अधिकार प्रदेश सरकार को दे दिए जाते हैं और वह प्रदेश सरकार क्षेत्रीयता का सहारा लेकर टकराव बढ़ाती हैं। यदि इस तरह प्रदेश सरकारों के अधिकार जिला, गांव और परिवार तक बांट दिए जाएं, तो क्षेत्रवाद की समस्या अपने आप समाप्त हो जाएगी। शक्तियों का विभाजन केंद्र से लेकर परिवार तक बैठ जाएगा। शक्तियां केंद्र और प्रदेश दो ही जगह नहीं रहेगी, इससे प्रदेशों के पास शक्ति कम हो जाने से टकराव समाप्त हो सकता है।

आयु अथवा लिंग के आधार पर :

आज हम देख रहे हैं कि भारत में युवा और वृद्ध के बीच एक टकराव पैदा किया जा रहा है। एक परिवार जिसका एक सदस्य राहुल गांधी है वह सारे देश में युवा सशक्तिकरण का संदेश दे रहा है। इसी परिवार की इस राहुल गांधी की बहन प्रियंका गांधी सारे देश में घूम-घूम कर यह संदेश दे रही है कि लड़की हूं, लड़ सकती हूं। इस परिवार की एक सदस्य सोनिया गांधी है जो महिला सशक्तिकरण की आवाज उठा रही है। विचारणीय प्रश्न यह है इस परिवार के कुल तीन सदस्यों में से तीनों समाज में अलग-अलग सशक्तिकरण की बात कर रहे हैं। दूसरी ओर जब घर में एक साथ बैठते हैं तब यह कभी अपने परिवार के अंदर युवा सशक्तिकरण, युवती सशक्तिकरण और महिला सशक्तिकरण की अलग-अलग बात नहीं करते। तीनों मिलकर परिवार सशक्तिकरण की बात करते हैं। तीनों बैठकर अपनी राजनीतिक ताकत बढ़ाने में लगे हुए हैं, लेकिन यह तीनों जब समाज में जाते हैं, तो तीनों उम्र के आधार पर अलग-अलग सशक्तिकरण की बात करते हैं। अलग-अलग वर्ग-विद्वेष बढ़ाते हैं, अलग-अलग वर्ग-संघर्ष करते हैं। सच्चाई यह है कि आज समाज में जो भी कानून बना रहे हैं वह एक तरफ युवा सशक्तिकरण की बात करते हैं, दूसरी तरफ वृद्धो की मदद के लिए भी चर्चा करते हैं समाज में यदि युवा और वृद्ध को या लड़का और लड़की को अलग-अलग बांटा गया तो यह परिवार व्यवस्था कैसे चलेगी यह समाज व्यवस्था कैसे चलेगी सामाजिक एकता का क्या अर्थ होगा? क्या सारे युवा अच्छे होते हैं और सारे वृद्ध बुरे होते हैं? क्या सारी महिलाएं अच्छी होती हैं और सारे पुरुष बुरे होते हैं? क्या सारी लड़कियां अच्छी होती हैं और सारे लड़के गलत होते हैं? मैं समझता हूं कि इस प्रकार के महिला-पुरुष, लड़का-लड़की, वृद्ध-युवा के विवाद समाज की समस्याओं को बढ़ाकर सिर्फ अपने परिवार के लिए राजनैतिक लाभ लेने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पूरे समाज को एकजुट होकर इस वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष करने वालों की पहचान करनी चाहिए। जो भी लोग युवा सशक्तिकरण, महिला सशक्तिकरण और नारी सशक्तिकरण की बात करते हैं वह समाज तोड़क लोग हैं।

वर्ग-निर्माण आर्थिक आधार पर:

पिछले कुछ 100 वर्षों में सारी दुनिया में जितनी हत्याएं साम्यवादियों ने अपने राजनैतिक विस्तारवाद के नाम पर की है, उतनी हत्याएं दुनियाभर में अपराधियों ने नहीं की

है। साम्यवादियों ने समाज में आपस में टकराव पैदा करने के लिए हमेशा गरीबों और अमीरों के नाम से दो झूठे वर्ग बनाए, जबकि गरीब-अमीर नामक कोई वर्ग होता ही नहीं है। सारी दुनिया में साढ़े 700 करोड़ लोग हैं। कोई भी दो व्यक्ति योग्यता और क्षमता में पूरी तरह समान नहीं होता। किसी की योग्यता शून्य तक होती है, किसी की असीम तक होती है और इस प्रकार योग्यता के आधार पर दुनिया के सभी व्यक्ति अलग-अलग होते हैं। यह प्राकृतिक रूप से सत्य है कि योग्यता और क्षमता के अनुसार ही सुविधाएं कम या ज्यादा मिलती है। सरकार की सिर्फ एक ही भूमिका होती है कि सभी लोग अपनी-अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा करें। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा पैदा करें, उस स्थिति में सरकार रेफरी के रूप में उस बाधा पैदा करने वाले से सुरक्षा की व्यवस्था करती है, सरकार का सिर्फ इतना ही काम होता है। लेकिन साम्यवाद समानता के नाम पर वर्ग-विद्वेष बढ़ाता है। गरीब और अमीर को अपनी योग्यता अनुसार उपलब्धि की तुलना में एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या और द्वेषभाव से टकराव पैदा करता है। यही साम्यवाद का एकमात्र काम है और इसी काम के आधार पर साम्यवाद जिंदा है। ना सभी गरीब अच्छे होते हैं, ना सभी अमीर बुरे होते हैं। सब की अच्छाई और बुराई की प्रवृत्ति अलग-अलग हो सकती है लेकिन दुनिया में साम्यवाद एक ऐसी विचारधारा है, जो सभी संपन्न लोगों को बुरा और सभी गरीब लोगों को अच्छा कह कर दोनों के बीच में इस प्रकार टकराव पैदा करता है कि उसकी अपनी रोजी-रोटी भी चलती रहे और साथ में उसकी राजनीतिक सत्ता भी मजबूत होती रहे। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि भारतीय संविधान से समानता शब्द को निकाल कर स्वतंत्रता शब्द शामिल कर देना चाहिए।

वर्ग-निर्माण आय के साधनों के आधार पर:

मैंने पूरे देश में कई बार घूम-घूम कर भी देखा और स्वयं भी अनुभव किया कि कितने परिवार हैं जो या तो किसान है या मजदूर है या व्यापारी है या सरकारी नौकर हैं। मुझे ऐसे परिवार बहुत कम मिले जो किसी एक प्रकार के हों। सच्चाई है कि अनेकों परिवारों में कोई खेती करता है, कोई मजदूरी करता है, कोई नौकरी करता है तो कोई सेवा में चला जाता है। कई ऐसे लोग भी मिले जो 6 महीने खेती करते हैं और 6 महीने व्यापार करते हैं, कभी नौकरी भी करते हैं। कोई भी एक परिवार एक ही तरह का रोजगार नहीं करता। मेरी समझ में वर्ग-संघर्ष करने का एक कम्युनिस्ट पैटर्न है जिसमें किसान और मजदूर दोनों को अलग-अलग करके दिखाया जाता है। व्यापारी और सरकारी कर्मचारी को वर्ग के रूप में

प्रस्तुत किया जाता है जबकि एक परिवार में एक व्यक्ति रिटायर होने के बाद कहीं नौकरी करने लगता है, दूसरा सरकारी सेवा में रहता है, तीसरा खेती भी करता है। इसलिए रोजगार के आधार पर वर्ग-संघर्ष करना यह किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। वर्तमान समय में किसानों के नाम पर जो सड़कें जाम कर रहे हैं, वे वास्तव में अपराधी तत्व हैं। उन्हें हम समाज विरोधी तत्व भी कह सकते हैं, क्योंकि किसान अपनी खेती में लगा हुआ है उसे तो आंदोलन की फुर्सत नहीं है, मजदूर भी मजदूरी करने में लगा हुआ है, उसे आंदोलन की फुर्सत नहीं है। यह आंदोलनजीवी सारे देश में अलग-अलग वर्ग बनाकर समाज में वर्ग-संघर्ष, वर्ग-विद्वेष फैला रहे हैं। वही आदमी सैनिक के रूप में अपने बेटे के आंदोलन में मदद कर रहा है, वही बेटा एक सैनिक की मदद करने के लिए आंदोलन में सड़कों पर पहुंच जाता है जबकि एक परिवार का एक सदस्य सैनिक भी है और दूसरा सदस्य किसान भी है। मैं यह महसूस करता हूँ कि यह वर्ग-विद्वेष एवं वर्ग-संघर्ष, समाज को अशांत करने का एक बहुत बड़ा हथियार है, और इस हथियार के एक भाग के रूप में किसान और मजदूर शब्दों का उपयोग किया जाता है जबकि कोई परिवार न सिर्फ किसान होता है, ना सिर्फ मजदूर होता है।

वर्ग-निर्माण जातियों एवं आरक्षण के आधार पर:

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जातीय आरक्षण पूरी तरह से समाज को टुकड़ों में बांटने का एक उपक्रम मात्र रहा है। समाज को तोड़ने वालों का उद्देश्य काफी हद तक सफल भी रहा है। नेहरू परिवार की राजनीति तो इसी सामाजिक विद्वेष पर निर्भर रही है । लेकिन वर्तमान समय में जातिवाद का विरोध किसी अच्छे परिणाम तक नहीं पहुंच पा रहा है तो उसका मुख्य कारण है 'जातीय आरक्षण'।

पूरी दुनिया में यह एक मान्य सिद्धांत है कि किसी भी प्रकार के आरक्षण से बुद्धिजीवियों में निराशा और आक्रोश बढ़ता है। क्योंकि आरक्षण से योग्यता का शोषण होता है, इसलिए आरक्षण हमेशा समाज में असंतोष बढ़ाने का कारण होता है। आरक्षण हमेशा घातक होता है चाहे वह राजनीति का आरक्षण हो, धार्मिक आरक्षण हो अथवा जातीय आरक्षण हो। बांग्लादेश में जो आरक्षण है वह राजनीतिक आरक्षण था। इस आरक्षण का कट्टरपंथी मुसलमान ने लाभ उठाकर वहां आरक्षण विरोधियों के साथ मिलकर सफलतापूर्वक तख्तापलट कर दिया। भारत में स्वतंत्रता के तत्काल बाद धार्मिक आरक्षण भी लागू हुआ। इस धार्मिक आरक्षण के कारण ही पिछले 10 वर्षों से जो असंतोष बढ़ा

हुआ था, उसका लाभ संघ परिवार और मोदी ने उठाया। यदि पंडित नेहरू ने मुसलमान को स्वतंत्रता के बाद धार्मिक आरक्षण नहीं दिया होता, तो संभव है कि नरेंद्र मोदी इसका लाभ नहीं उठा पाते। भारत में जातीय आरक्षण है, इसके कारण भी पूरे समाज में बहुत आक्रोश है, बहुत असंतोष है लेकिन इस आक्रोश का लाभ उठाने वाला कोई राजनीतिक दल नहीं है क्योंकि जब तक कोई इसका लाभ नहीं उठाता है, तब तक किसी प्रकार का बदलाव नहीं होता है। दुर्भाग्य से भारत में विपक्ष इस जातीय आरक्षण का समर्थक है और यही कारण है कि वह जातीय आरक्षण का लाभ नहीं उठा सका जो बांग्लादेश में उठाया गया, जो नरेंद्र मोदी द्वारा उठाया गया, लेकिन जाति आरक्षण का लाभ किसी को नहीं मिल पा रहा है। फिर भी कभी ऐसा समय आ सकता है कि इस जातीय आरक्षण का लाभ उठाने वाली परिस्थितियां न रह जाए और उन परिस्थितियों का लाभ उठा रहे लोगों के लिए इस प्रकार घातक हो जाए, जिस प्रकार बांग्लादेश में हुई, जिस प्रकार पिछले कुछ समय में नेहरू परिवार की हुई। इस विषय में अभी कोई स्पष्ट परिस्थितियां नहीं है लेकिन किसी भी संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

गांधी किसी भी प्रकार के आरक्षण के खिलाफ थे, सरदार पटेल और राजेंद्र बाबू भी गांधी के साथ थे, पंडित नेहरू पूरी तरह मुसलमान के पक्ष में थे। अंबेडकर जाति और महिला आरक्षण के पक्ष में थे, जबकि नेहरू ज्यादा मुस्लिम आरक्षण के। नेहरू और अंबेडकर ने समझौता कर लिया। भारत का मुसलमान रोजगार में या नौकरी में आरक्षण नहीं चाहता था। भारत का मुसलमान आबादी बढ़ाने की स्वतंत्रता चाहता था। नेहरू ने हिंदू कोड बिल बनवाकर मुसलमान को आरक्षण दे दिया कि मुसलमान एक से अधिक शादियां कर सकता है, वह आबादी बढ़ा सकता है, वह अधिक से अधिक बच्चे पैदा कर सकता है और हिंदुओं पर प्रतिबंध रहेगा। इस तरह भारत में मुस्लिम आरक्षण की नींव पड़ी। दूसरी ओर अंबेडकर ने जातीय आरक्षण देकर हिंदुओं की एकजुटता को तोड़ने का सारा इंतजाम कर दिया। इस तरह इस आरक्षण की बीमारी ने अपने देश में हिंदुओं की एकजुटता का नुकसान किया। गांधी ने न चाहते हुए भी 10 वर्षों के लिए आरक्षण स्वीकार कर लिया, जिससे आपस में किसी तरह की फूट ना पड़े। लेकिन गांधी किसी भी रूप में मुस्लिम आरक्षण के समर्थक नहीं थे। गांधी के मरने के बाद सांप्रदायिक नेहरू ने यह सारी व्यवस्था की। इस तरह नेहरू और अंबेडकर ने मिलकर भारत में आरक्षण रूपी बीमारी डाल दी और उस बीमारी से भारत का बहुसंख्यक हिंदू आज तक पीड़ित है। आज भी इस आरक्षण रूपी बीमारी का कोई समाधान दिख नहीं रहा है लेकिन हमें इसका समाधान खोजना ही होगा।

धार्मिक आरक्षण के समाधान के लिए नरेंद्र मोदी जी ने जो योजना (धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता) बता दी है, वह सबसे अच्छा समाधान है। मुझे मालूम है कि कुछ कट्टरपंथी हिंदू और आमतौर पर मुसलमान नरेंद्र मोदी की इस योजना का खुला विरोध करेंगे, क्योंकि सांप्रदायिक हिंदू या मुसलमान दोनों को यह योजना बिल्कुल पसंद नहीं आएगी। मैं यह भी जानता हूँ कि भारत का 90% हिंदू हमेशा धर्मनिरपेक्ष रहता है, वह सांप्रदायिक होता ही नहीं है। इसलिए कुछ मुट्ठीभर कट्टरपंथी हिंदू और मुसलमान एकजुट होकर भी इस योजना को फेल नहीं कर पाएंगे।

स्वतंत्रता के बाद भारत में इन समस्याओं के समाधान के लिए गांधी, आर्य समाज, श्रीराम शर्मा के गायत्री परिवार जैसी कुछ सामाजिक संस्थाओं ने बीड़ा उठाया। दूसरी ओर अंबेडकर तथा कुछ अन्य जातिवादी संगठनों ने इन समस्याओं से लाभ उठाने का प्रयत्न किया और उसका लाभ उठाने के उद्देश्य से इन्होंने भारत में जातीय आरक्षण लागू कर दिया। इस प्रकार के आरक्षण हमेशा वर्ग-संघर्ष बढ़ाते हैं और इसके परिणाम में सामाजिक विघटन होता है। यही प्रयास जीवन भर पंडित नेहरू ने किया, जिन्होंने लगातार मुस्लिम सांप्रदायिकता को प्रोत्साहित किया और यही अंबेडकर ने किया। इस प्रकार के जातीय सांप्रदायिक आरक्षण के परिणाम अब धीरे-धीरे प्रकट होने लगे हैं। मणिपुर में हमने इसी प्रकार के आरक्षण से पैदा होने वाली हिंसा देखी है, जिस हिंसा को बढ़ाने और उसका लाभ उठाने में नेहरू परिवार पूरे जोर-शोर से लगा हुआ है। आज से 15-20 वर्ष पूर्व हम लोगों ने उड़ीसा में भी ऐसे आरक्षण के परिणामस्वरुप होने वाली हिंसा का परिणाम देखा है और अभी एक सप्ताह पहले ही हमने बांग्लादेश में इसका परिणाम देखा। आरक्षण किसी भी समस्या का समाधान नहीं है बल्कि उस समस्या से लाभ उठाने का माध्यम मात्र है। मेरे विचार से इस समस्या का अब समाधान खोजने की आवश्यकता है।

5018 प्रतिस्पर्धा व्यक्ति को कार्य की क्षमता के साथ-साथ परिणाम भी निश्चित करती जाती है। प्रतिस्पर्धा ही उसे और अधिक गति से काम करने की प्रेरणा देती है। इसलिए राज्य को चाहिए कि वह स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में कभी कोई हस्तक्षेप न करे।